

अनिर्वचनीय आनन्द का स्रोत : स्वानुभूति

—मुनिश्री अमरेन्द्रविजय जी

(अध्यात्मप्रधान अनेक पुस्तकों के लेखक

तत्त्वचिन्तक तथा ओजस्वी प्रवचनकार)

अनुभव : जीवनमुक्ति का अरणोदय

निज अनुभव लवलेश से, कठिन कर्म हो नाश ।

अल्पभव में भवि लहे, अविचलपुर का वास ॥^१

उपर्युक्त कथन में यह बात प्रकट होती है कि स्व-स्वरूप का 'अनुभव' भव-भ्रमण की दीर्घ परम्परा को अत्यन्त लघु कर देता है । अनुभव में ऐसा क्या जादू है कि उसे प्राप्त करने वाला व्यक्ति अल्पभव में ही मुक्ति प्राप्त कर ले ? इसका रहस्य यह है कि 'अनुभव' द्वारा एक पल में आत्मा का प्रत्यक्ष ज्ञान मिलता है । निज की यह अनुभूति व्यक्ति की जीवनदृष्टि में एक जबर्दस्त क्रान्ति लाती है । श्रुत—श्रवण, वाचन आदि—के द्वारा प्राप्त हुआ बौद्धिक स्तर का ज्ञान ऐसी आमूलचूल क्रान्ति का सर्जन नहीं कर सकता ।

मोहनाश का अमोघ उपाय

श्रुत द्वारा स्वरूप का बोध होने से एवं उससे चित्त भावित होने से, क्रमशः मोह की पकड़ ढीली होती जाती है, और विषय-कषाय के आवेग कुछ शिथिल हो जाते हैं । किन्तु विषयों का रस—विषयों में अनादि से रही सुख-भ्रान्ति—केवल श्रुत से नहीं टलती^२, यह भ्रान्ति 'अनुभव' से मिटती है । अनुभव द्वारा निज के निरुपाधिक आनन्द का आस्वादन मिलने पर विषयेन्द्रियों के भोग वास्तव में ही नीरस

१. चिदानन्द जी महाराज, स्वरोदय ज्ञान, दोहा-५३ ।

२. उपाध्याय यशोविजय जी, अध्यात्मोपनिषद्, ज्ञानयोग, श्लोक-४ ।

लगते हैं।^१ इतना ही नहीं, सर्व पुद्गल खेल इन्द्रजाल के समान लगने लगते हैं। इससे आत्मज्ञानी के लिए जगत की घटनाओं का महत्त्व स्वप्न की घटनाओं से कुछ भी अधिक नहीं रहता,^२ अर्थात् 'अनुभव' जीवन-विषयक समग्र दृष्टिकोण ही बदल देता है।

बौद्धिक प्रतीति विचार-विमर्श से पैदा होती है, किन्तु विचार स्वयं ही अविद्या पर निर्भर है।^३ अतः आत्मस्वरूप की निभ्रान्ति प्रतीति विचार-विमर्श के द्वारा प्राप्त नहीं होती, यह प्रतीति विचार शान्त होने पर ही मिलती है। मन की उपशान्त अवस्था अथवा उसका नाश यह उन्मनी अवस्था है। इस अवस्था में 'अनुभव' मिलता है।^४ इसलिए आत्मज्ञान की—अनुभव की प्राप्ति के इच्छुक मुमुक्षु को चाहिए कि वह प्रथम चंचल चित्त को अपनी इच्छानुसार प्रवर्तन करने की सामर्थ्य प्राप्त करे, और फिर एकाग्र बने इस चित्त को आत्मविचार में लगाकर उसका नाश करे।^५ मोहनाश का यह अमोघ उपाय है।^६

अनुभव क्या है ?

चिदानन्द जी महाराज ने 'अनुभव' का परिचय देते हुए कहा है—

आपोआप विचारते, मन पाये विश्राम ।
रसास्वाद सुख ऊपजे, अनुभव ताको नाम ॥
आत्म अनुभव तीर से, मिटे मोह अंधार ।
आप रूप में झलझले, नहिं तस अन्त अपार ॥^७

सिद्ध परमात्मा या श्री जिनेश्वरदेव के अथवा अपने ही शुद्ध स्वरूप का चिन्तन-मनन और ध्यान करते किसी धन्य क्षण में आत्मा शान्त हो जाता है एवं ध्याता, ध्येय के साथ तदाकार बन शुद्ध आत्म-स्वरूप में लीन होकर, स्वयं के यथार्थ स्वरूप का एवं निजी अन्तरंग ऐश्वर्य का 'दर्शन' प्राप्त करता है। खुद के अलौकिक, शाश्वत आनन्दस्वरूप की इस अनुभूति से मोह अन्धकार के नष्ट हो जाने से ध्याता को तत्काल आत्मज्ञान का प्रकाश प्राप्त होता है। इस अपूर्व घटना को शास्त्रीय परिभाषा में 'आत्मज्ञान' अथवा 'अनुभव' की संज्ञा दी गई है।

१. (क) योगदृष्टि समुच्चय, श्लोक—६६ ।
(ख) अध्यात्म सार, ध्यानस्तुत्यधिकार, श्लोक—२ ।
२. (क) समाधि शतक, दोहा—४ ।
(ख) अध्यात्मोपनिषद्, ज्ञानयोग, श्लोक—६ ।
३. द्वात्रिंशद्द्वात्रिंशिका, २३, श्लोक—६ ।
४. (क) अध्यात्मोपनिषद्, ज्ञानयोग, श्लोक—२४ ।
(ख) योगशास्त्र 'सटीक' प्रकाश—१२, श्लोक—३६ ।
५. योगशास्त्र, प्रकाश—१२, श्लोक—५, टीका ।
६. (क) अध्यात्मसार, अनुभवाधिकार, श्लोक १७-१९ ।
(ख) योगशास्त्र, प्रकाश—१२, श्लोक—४० ।
७. अध्यात्म वावनी ।

सूर्योदय से जिस प्रकार अरुणोदय प्रकट होकर रात्रि के अन्धकार को हटा देता है, उसी प्रकार केवल-ज्ञान के सूर्य का उदय हो, उससे पहले अनुभव रूपी अरुणोदय आकर मोह के अन्धकार को हटा देता है। सबेरे प्रकाश आकर पूरी रात की प्रगाढ़ निद्रा अथवा स्वप्नमाला का एक क्षण में अन्त कर देता है, उसी प्रकार अनुभव का आगमन देह एवं कर्मकृत व्यक्तित्व से अनादि के अपने तादात्म्य को एक ही पल में चीर डालता है। यह देह और इसमें बसने वाला 'मैं'—ये दोनों एक ही आकाश प्रदेश के वासी होने के कारण सामान्य रूप से एक ही महसूस होते हैं, किन्तु वास्तव में दोनों हैं बिल्कुल अलग-अलग। अनुभव के प्रकाश में यह हकीकत, मात्र बौद्धिक समझ न रहकर जीवन्त सत्य बन जाती है। पहने हुए कपड़े स्वयं से अलग हैं, यह भान प्रत्येक मनुष्य को जितना स्पष्ट है, उतनी स्पष्टता से आत्मानुभवयुक्त देह को स्वयं से अलग अनुभव करता है।

जिनको अपरोक्ष अनुभव नहीं हुआ, अथवा इसकी झलक भी प्राप्त नहीं हुई, उनको स्वानुभूति की दशा वाणी द्वारा समझाना मुश्किल है। जन्मान्ध को रंगों के भेद वाणी द्वारा कैसे समझाए जा सकते हैं? जिन्होंने कभी घी अथवा मक्खन चखा तक नहीं, उन्हें घी अथवा मक्खन का स्वाद वाणी द्वारा किस तरह बताया जाए? अनुभव की अवस्था की जानकारी देने का प्रयास करते हुए अनुभवियों को यही उलझन रहती है। जो स्थिति भाषा से परे हैं, उसे वाणी द्वारा किस प्रकार व्यक्त करना? अतः अनुभव-विषयक कोई भी निरूपण अधूरा लगना स्वाभाविक है। फिर भी इससे अनुभव अवस्था का जरा-सा भी ख्याल जिज्ञासुजन पा रहे हों तो इससे अच्छा और क्या?

ज्ञानियों ने अनुभव को 'तुरीय', अर्थात् चौथी अवस्था कहा है। नींद एवं जागृति, इन दो अवस्थाओं से हम सब परिचित हैं। जागृत अवस्था में हमारा मन एवं इन्द्रियां बाहरी जगत् के साथ के सम्बन्ध में रहकर हमें उसका ज्ञान कराती हैं। नींद में बाह्य जगत् का सम्पर्क छूट जाता है। इन्द्रियां एवं मन अपना काम बन्द कर आराम करते हैं एवं हम शून्यता में खोये हुए रहते हैं। कितनी ही बार शून्यता में खो जाने के बजाय, हम स्वप्न देखते हैं, यह इस बात का द्योतक है कि मन की प्रवृत्ति सर्वथा रुकी नहीं। स्वप्नावस्था में इन्द्रियां बाह्य जगत् को ग्रहण नहीं करतीं, शरीर निश्चेष्ट पड़ा होता है, परन्तु मन गतिशील रहता है। इस प्रकार अपने परिचय की तीन अवस्थाएँ हुई—जागृत, गहरी नींद एवं स्वप्न। अनुभव की चौथी अवस्था इन तीनों से भिन्न है, इसका अपना अनोखा व्यक्तित्व है। गहरी नींद में बाह्य जगत् भुला जाता है। उसके साथ ही जागृति भी चली जाती है, जबकि तुरीय के इस अनुभव के समय, बाह्य जगत् का भान न होते हुए भी, सावधानी—जागृति पूर्ण होती है और स्वयं की आनन्द-पूर्ण अस्तित्व-सत्ता प्रबलता से अनुभव में आती है।^१ एक सन्त इस अवस्था का परिचय इस प्रकार देते हैं—

“जागृति में भी प्रगाढ़ निद्रा, अर्थात् इन्द्रियां, मन, बुद्धि, अहंकार—सभी निद्राधीन हैं एवं देह में परमेश्वर जागता है।”

१. (क) योगशास्त्र, प्रकाश-१२, श्लोक—४७-४९।

(ख) उपाध्याय यशोविजय जी कृत अध्यात्मोपनिषद्, ज्ञानयोग, शुद्धि० श्लोक—२४-२५।

जब यह अनुभव आता है, तब अकस्मात् आता है। अचानक ही चित्त विचार-तरंगों से रहित होकर शान्त हो जाता है, देह का भान जाता रहता है एवं आत्मप्रकाश झिलमिलाने लगता है। मेघों से आच्छादित अँधेरी रात में जैसे अनजाने मार्ग पर खड़े पथिक को अचानक दमकती बिजली की कौंध में अपने आस-पास का दृश्य दिखाई दे जाता है। उसी प्रकार, इस अनुभव से साधक को एक पल में ही आत्मा के निश्चय शुद्धस्वरूप का 'दर्शन' हो जाता है, अपने अकल, अबद्ध, शाश्वत, शुद्धस्वरूप का अनुभव होता है—इसकी प्रतीति मिलती है। श्रुत की तरह यहाँ क्रमशः ज्ञान की अभिवृद्धि नहीं होती, किन्तु क्षणभर में ही पूर्व के अज्ञान का स्थान आत्मा का निर्भ्रान्त ज्ञान ले लेता है। वर्षों के शास्त्र-अध्ययन से प्राप्त हो, उससे अधिक स्पष्ट, निश्चित एवं सूक्ष्म ज्ञान उन अल्प क्षणों में प्राप्त हो जाता है।

यह अनुभव अत्यन्त सुखकर होता है। उस समय वचनातीत शान्ति मिलती है, किन्तु अकेली शान्ति अथवा आनन्द के अनुभव को ही स्वानुभूति का लक्षण नहीं कहा जा सकता। चित्त थोड़ा भी स्थिर हुआ कि शान्ति एवं आनन्द का अनुभव तो होगा, किन्तु यहाँ ज्ञाता एवं ज्ञेय का भेद नहीं रहता, और ध्याता ध्येय के साथ एकाकार बना रहता है, परमात्मतत्त्व के साथ ऐक्य का अनुभव रहता है, आनन्द वचनातीत होता है, विद्युत् की कौंध की भाँति एकाएक ज्ञानप्रकाश प्रवाहित हो उठता है, एवं साधक को अपने समक्ष विश्व का रहस्य खुल गया—सा प्रतीत होता है एवं उसे यह ज्ञान, विश्वास तथा निश्चय हो जाता है कि भविष्य अन्धकारमय नहीं, किन्तु उज्ज्वल है। इस विश्वास के साथ मृत्यु का भय ही विनष्ट हो जाता है। मृत्यु से परे स्वयं का शाश्वत अस्तित्व है, इसकी उसे अचल प्रतीति मिलती है एवं उसके अन्तर् में समस्त विश्व का आलिङ्गन करने वाला प्रेम उमड़ पड़ता है। ये है अपरोक्षानुभूति के समय के कुछ विशेष अनुभव।

डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् के शब्दों में कहा जाय तो—

“इस दर्शन—साक्षात्कार के साथ निरवधि आनन्द आता है, बुद्धि की पहुँच के परे का ज्ञान उपलब्ध हो जाता है, स्वयं जीवन से भी तीव्रतर संवेदन होता है, एवं अपार शान्ति तथा आनन्द का अनुभव होता है” “इस शाश्वत तेज के स्मरण का स्थायी असर रह जाता है, एवं ऐसा अनुभव फिर से प्राप्त करने को मन छटपटाता है।”¹

स्वानुभूति की अभिव्यक्ति

यहाँ यह याद रहे कि शब्द द्वारा अनुभव के विषय में हम जो कुछ जान सकते हैं, वह अनुभव का अपने मन से बनाया गया चित्र है। अनुभव के समय ज्ञाता-ज्ञेय का भेद करने वाला मन सोया हुआ रहता है, एवं आत्मा ज्ञेय के साथ तदाकार रहती है। बाद में मन जागृत होता है, तब अनुभव के समय जो हुआ, उसको याद करने का वह प्रयास करता है, जिसमें वह कठिनता से ही सफल होता है।

जागृत होने के बाद चित्त अनुभव को स्मरण करे एवं उसका वर्णन दूसरों के सामने प्रस्तुत करे, उसमें—

१. डॉ० राधाकृष्णन् 'धर्मोनु मिलन,' पृ० २६७ (भारतीय विद्या भवन, बम्बई—७)

(१) अनुभव करने वाले व्यक्ति की अनुभव की घटना से पहले की मानसिक रचना ।

(२) उसके आस-पास की परिस्थिति—देशकाल ।

(३) अपने अनुभव की बात वह जिनके समक्ष व्यक्त कर रहा हो, उस जन-समूह की मानसिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक भूमिका ।

(४) उस व्यक्ति की स्वयं की अभिव्यक्ति की क्षमता (expression power) ।

इन सबकी—चारों की छाप, इस वर्णन में आये बिना नहीं रहती । अतः मन द्वारा वाणी में अनुभव का जो चित्र अंकित किया जाता है, वह कोई रम्य नैसर्गिक दृश्य का मात्र दो-चार रेखाओं से अंकित 'स्केच' जैसा भी मुश्किल से ही हो सकता है ।

जिन्होंने इस दशा का अनुभव किया है, वे सभी यही कहते हैं कि उसे वे वाणी द्वारा व्यक्त करने में स्वयं असमर्थ हैं । अतः इस अपरोक्षानुभव को पूर्ण रूप से समझने के लिए उसका स्वयं अनुभव लेना ही आवश्यक है, शब्द तो इसका संकेत मात्र ही कर सकते हैं । फिर भी, जैसे अंगुली से वृक्ष की डाली की ओर संकेत कर दूज का चन्द्रमा बताया जाता है, उसी प्रकार, शब्द का संकेत करके आत्मानुभव की ओर श्रोताओं की दृष्टि ले जाने का प्रयास होता रहता है ।

बहुधा ऐसे संकेत सूत्रात्मक शैली से पद्य में—काव्य में हुए हैं । अभिव्यक्ति से परे की इन अनुभूतियों को गणित के समीकरण या भौतिक विज्ञान के नियमों की तरह स्पष्ट शब्दों के दायरे में बाँधा नहीं जा सकता, काव्य का प्रवाही माध्यम ही, आध्यात्मिक अनुभूति ही अभिव्यक्ति के लिए अधिक रहता है । अतः साधकों तथा अनुभवियों ने भजनों एवं पदों में, ऐसे ही अन्य काव्य-प्रकारों में अपनी अनुभूति के कुछ संकेत दिये हैं । कई महान कवियों ने भी अपनी उत्तम काव्यकृतियों में इस अनुभूति के संकेत दिये हैं । फिर भी, काव्यमय भाषा में अक्षरांकित इन टुटक संकेतों में से अनुभव की मूल काया का पूर्ण चित्र उपस्थित करना कठिन होता है । अतः पद्यों में दिये हुए इन संकेतों से सामान्य जन अनुभव के समय की—साधक की आन्तरिक स्थिति का स्पष्ट बोध प्राप्त नहीं कर पाता ।

अनुभव क्या है, इसकी कुछ स्पष्ट कल्पना जिज्ञासु पाठक कर सके, इसके लिए अनुभव-प्राप्त दो-तीन महानुभावों के उद्गार उन्हीं के गद्य-शब्दों में यहाँ दिये जा रहे हैं । यहाँ यह उल्लेखनीय है कि ये महानुभाव पिछले सौ वर्षों में हमारे बीच रहे हुए व्यक्तियों में से हैं ।

योगियों के अनुभव-कथन में संभव है कि बुद्धिवादी पाठकों को मात्र अतिशयोक्ति या उर्मिलता का आवेग ही दिखाई दे, इसलिए पहले एक बुद्धिजीवी—अमेरिकन डाक्टर का अनुभव, उसके स्वयं के ही शब्दों में आपके सामने प्रस्तुत है । 'अमेरिकन मैडिको साइकॉलॉजिक एसोसियेशन' के तथा 'ब्रिटिश मेडिकल एसोसियेशन' के साइकॉलॉजिकल विभाग के भूतपूर्व अध्यक्ष डा० रिचार्ड मोरिस बक, एम० डी० स्वयं का अनुभव बताते हुए लिखते हैं—

“अकस्मात् बिना किसी पूर्व सूचना के अग्नि की लपटों—जैसे रंग के बादलों से उसने^१ अपने आपको घिरे हुए देखा—उसके मन में एक क्षण के लिए विचार चमक गया आग का—बड़े शहर में अचानक प्रगटे हुए किसी दावानल का । दूसरे ही क्षण, उसे लगा कि प्रकाश तो उसके अन्दर ही था ।

१. इस आलेखन में डा० बक ने स्वयं का उल्लेख अन्य पुरुष के सर्वनाम से किया है । इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि उस समय वे व्यक्तित्व भावना से कितने ऊपर उठे हुए थे ।

इसके बाद तुरन्त ही वह परमानन्द में डूब गया। अमर्याद आनन्द। इसके साथ या इसके पीछे जो बौद्धिक ज्ञानप्रकाश उभरा, उसे वाणी में किस प्रकार से व्यक्त किया जाए, इसका वर्णन करना अशक्य है। उसके दिमाग में ब्राह्मी ऐश्वर्य की एक विद्युत्तरेखा-सी प्रस्तुत हो गई, जिसका प्रकाश इसके बाद उसके सारे जीवन को आलोकित करता रहा। उसके हृदय पर ब्रह्मामृत की एक बूँद गिरी, जो मुक्तिसुख का आस्वाद सदा के लिए छोड़ गई।^१

इस अनुभव के बाद डा० बक ऐंस अनुभव से भलीभाँति परिचित एक ऐसे व्यक्ति के सम्पर्क में आये, जिनके साथ की बातचीत ने, उन्हें स्वयं की जो अनुभव हुआ था, उसके रहस्य पर अत्यन्त प्रकाश डाला। इसके बाद उन्होंने इस विषय में संशोधन करके एक ग्रन्थ की रचना की, जिसका नाम है—‘Cosmic Consciousness’—‘विश्वचेतना’। स्वयं के उपर्युक्त विषय के अनुभव में इस ग्रन्थ में विशेष विवरण देते हुए वे लिखते हैं—

“...उसका यह दावा है कि इस अनुभव से पूर्व महीनों अथवा वर्षों के अभ्यास द्वारा जितना ज्ञान उसको मिला होगा, उसके बनिस्बत अधिक ज्ञान उसको इस अनुभव के थोड़े-से ही क्षणों में मिल गया—कुछ ऐसा ज्ञान, जो चाहे जितने अभ्यास के द्वारा प्राप्त होना संभव न था। यह प्रचण्ड ज्ञान-प्रकाश थोड़े ही क्षणों तक रहा, किन्तु उसका असर स्थायी रहा। उन क्षणों में उसने जो देखा एवं जाना, उसे वह कभी भी भूल नहीं सकता। इसी प्रकार उस समय उसके चित्त के समक्ष जो प्रगट हुआ, उसमें उसने कभी शंका नहीं उठाई—शंका उठ ही नहीं सकती।”^२

दक्षिण भारत के विश्व-विख्यात सन्त श्री रमण महर्षि को इस जीवन के किसी भी प्रयत्न अथवा साधना के बिना, अचानक ही आत्मानुभूति प्राप्त हुई थी। हाईस्कूल के अन्तिम वर्ष में वे अभ्यास कर रहे थे। उस समय मात्र सत्रह वर्ष की आयु में, एक दिन अचानक उनको यह असाधारण अनुभूति हुई। शरीर पूर्ण स्वस्थ होते हुए भी, एक दिन सहसा मृत्यु के भय ने उनको घेर लिया। किसी बाहरी निमित्त के बिना ही उन्हें ऐसी प्रतीति हुई, मानो मृत्यु ने अपना पंजा उनकी ओर फैला दिया है। शरीर को शव की भाँति निश्चेष्ट बनाकर वे सो गये—मानो शरीर निष्प्राण हो गया हो, ऐसा उन्होंने अभिनय किया। किन्तु शरीर की स्थिति शव-जैसी होते हुए भी, भीतर ‘मैं’ का भान तो पूर्ववत् ही चालू रहा, इससे उन्होंने मन-ही-मन प्रश्न किया—‘मैं’ कौन ? और आवरण हट गया। उस समय की अपनी अनुभूति का व्यौरा उन्होंने स्वयं इस प्रकार दिया है—

“मदुरा से सदा के लिए खाना होने से पहले लगभग छह सप्ताह पूर्व मेरे जीवन में यह महान परिवर्तन आया। मेरे चाचा के मकान पर पहली मंजिल पर कमरे में मैं अकेला बैठा हुआ था। मुझे कभी कोई बीमारी नहीं हुई थी, एवं उस दिन भी मेरा स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक था। किन्तु एकाएक मृत्यु के भीषण भय ने मुझे घेर लिया। मृत्यु के भय के आघात के कारण मैं अन्तर्मुख हुआ एवं मेरे मन में अनायास ही विचार उभरने लगे, ‘अब मृत्यु आ पहुँची है। इसका अर्थ क्या ? मृत्यु किस की ? यह शरीर

१. Proceedings and Transactions of the Royal Society of Canada Series II, Vol. 12, pp. 159-196.

२. Dr. Richard Maurice Bucke, M. D., Cosmic Consciousness, p. 10 (E. P. Dutton and Co., Newyork.)

अब नहीं रहेगा' एवं मैंने एकाएक मृत्यु का अभिनय करना शुरू किया। मेरे अंगों को स्थिर रखकर मैं भूमि पर लेट गया। श्वास को मैंने रोक लिया और अपने ओंठ कसकर बन्द कर लिये, ताकि मैं कोई भी आवाज अपने मुख से न निकाल सकूँ। शव का मैंने हूबहू अनुकरण किया, जिससे इस खोज के अन्तस्तल तक मैं पहुँच सकूँ। इसके बाद मैं स्वयं विचारने लगा कि 'मेरा यह शरीर मृत है, लोग इसे उठाकर श्मशान-घाट ले जाएंगे और इसे जला देंगे, तब यह राख हो जाएगा। किन्तु क्या इस शरीर की मृत्यु से मेरी मृत्यु हो जाएगी? क्या मैं शरीर हूँ? मेरा शरीर मौन और जड़ पड़ा है, किन्तु मैं मेरे व्यक्तित्व को पूर्णरूप से अनुभव कर रहा हूँ और मेरे भीतर उठती 'मैं' की आवाज को भी मैं अनुभव कर रहा हूँ। अर्थात् मैं शरीर से परे आत्मा हूँ। शरीर की मृत्यु हो जाती है, किन्तु आत्मा को मृत्यु स्पर्श तक भी नहीं कर सकती, अर्थात् 'मैं' अमर आत्मा हूँ।' यह कोई शुष्क विचार-प्रक्रिया नहीं थी, जीवित सत्य की भाँति अत्यन्त स्पष्टतापूर्वक ये विचार मेरे मन में बिजली की तरह कौंध गये। बिना किसी विचार के मुझे सत्य का प्रत्यक्ष दर्शन हो गया। 'अहं' ही वास्तविक सत्ता थी, और शरीर से सम्बद्ध समस्त हलचल इस 'अहं' पर ही केन्द्रित थी। मृत्यु का भय सदा के लिए नष्ट हो चुका था। इसके आगे आत्मकेन्द्रित ध्यान अविच्छिन्न रूप से जारी रहा।

“इस नई चेतना के परिणाम मेरे जीवन में दृष्टिगोचर होने लगे। सर्वप्रथम मित्रों और सम्बन्धियों में रस लेना मैंने बन्द कर दिया। मैं मेरा अध्ययन यांत्रिक भाव से करने लगा। मेरे सम्बन्धियों को सन्तोष देने के लिए मैं पुस्तक खोलकर बैठ जाता, किन्तु वस्तुस्थिति यह थी कि मेरा मन पुस्तक में जरा भी नहीं लगता था। लोगों के साथ के व्यवहार में मैं अत्यन्त विनम्र एवं शान्त बन गया। पहले अगर मुझे दूसरे लड़कों के बनिस्बत अधिक काम दिया जाता था तो मैं इसकी शिकायत किया करता था और अगर कोई लड़का मुझे परेशान करता तो मैं उसका बदला लेता। कोई लड़का मेरे साथ उच्छृङ्खल बरताव करने का अथवा मेरी मजाक उड़ाने का साहस नहीं करता था। अब सब कुछ बदल चुका था। मुझे जो भी काम सौंपा जाता, मैं उसे खुशी से करता। मुझे चाहे जितना परेशान किया जाता, मैं उसे शान्ति से सहन कर लेता। विक्षोभ एवं बदला लेने की वृत्ति वाले मेरे अहं का लोप हो चुका था। मित्रों के साथ बाहर खेलने जाना मैंने बन्द कर दिया और एकान्त पसन्द करने लगा। अधिकतर ध्यानावस्था में बैठ जाता और आत्मा में लीन हो जाता।^१ मेरा बड़ा भाई मेरी मजाक उड़ाया करता था और व्यंग्य से 'साधु' अथवा 'योगी' कहकर मुझे बुलाता, एवं प्राचीन ऋषियों की तरह वन में चने जाने की सलाह दिया करता था। मुझमें दूसरा परिवर्तन यह हुआ कि भोजन के सम्बन्ध में मेरी कोई रुचि-अरुचि नहीं रही। जो कुछ भी मेरे सम्मुख परोसा जाता—स्वादिष्ट या अस्वादिष्ट, अच्छा या बुरा—मैं उसे उदासीन भाव से निगल जाता।

“एक और परिवर्तन मुझमें यह हुआ कि मीनाक्षी के मन्दिर के प्रति मेरी धारणा बदल गई। पहले मैं मन्दिर में कभी-कभी मित्रों के साथ मूर्तियों के दर्शन करने तथा मस्तक पर पवित्र विभूति एवं

१. इस घटना के करीब दो महीने बाद घर का त्याग करके वे अरुणाचल गये। वहाँ ध्यान में बाहर का कोई विक्षेप न रहे, इसलिए एकान्त स्थान ढूँढ़ते हुए मन्दिर का एक तलघर उनकी नजरों में चढ़ा, उसमें घुसकर वे ध्यान में बैठ गये। इस वीरान तलघर में जीव-जन्तुओं ने उनकी जंघाओं को काट खाया। उनमें जड़म हो गये, तथा उन से रक्त एवं पीव बहने लगे। यह होते हुए भी उन्हें इसका जरा-सा भी भान न हुआ। इससे यह प्रतीत होगा कि उस समय वे देहभावना से परे होकर आत्मा में कितने लीन रहते थे।

सिन्दूर लगाने के लिए जाया करता था और बिना किसी आध्यात्मिक प्रभाव के मैं घर वापस आ जाया करता था। किन्तु जागरण के बाद मैं प्रायः प्रतिदिन सन्ध्या के समय वहाँ जाने लगा। मैं मन्दिर में अकेला जाता और शिव, मीनाक्षी या नटराज एवं तिरसठ सन्तों की मूर्तियों के समक्ष अविचल भाव से खड़ा हो जाता। मेरे हृदय-सागर में भावना की लहरें उठने लगतीं.....प्रायः मैं किसी भी प्रकार की प्रार्थना नहीं करता था, किन्तु निज की अतल गहराइयों में विद्यमान अमृतप्रवाह को अनन्त सत्ता की ओर प्रवाहित होने देता। मेरी आँखों में से आँसुओं की अजस्र धारा बहने लगती और आत्मा को उसमें सराबोर कर देती।

“.....यह अनुभव मुझे प्राप्त हुआ, इसके पहले भव-भ्रमण से मुक्त होने की अथवा वासनाशून्य होने की कोई उत्कट इच्छा मुझमें नहीं उठी थी। मैंने ब्रह्म, संसार अथवा ऐसे किसी अन्य तत्त्व के विषय में कभी कुछ सुना नहीं था।..... बाद में तिरुवन्न-मलाई में जब मैंने विभु गीता और अन्य धार्मिक ग्रन्थ पढ़े, तब मुझे ज्ञात हुआ कि धार्मिक ग्रन्थों में उस अवस्था का विश्लेषण एवं नामोल्लेख है, जिसे मैं बिना किसी भी विशेषण या नाम के मुझ में स्फुरण रूप से अनुभव कर रहा था।”^{1, 2}

श्री रमण महर्षि के अनुभव की एक विलक्षणता यह थी कि उनका अनुभव क्षणिक नहीं था। सामान्य रूप से जब ऐसी अनुभूति मिलती है, तब साधक परमानन्द का अनुभव करता है, किन्तु यह आनन्द कुछ क्षण ही टिकता है। उन क्षणों के बाद वह पुनः सामान्य मनुष्य की भाँति संसार के द्वन्द्वों में उलझ जाता है, जबकि श्री रमण महर्षि ने बताया है कि इस अनुभव के बाद उन्हें आत्मा का अनुसन्धान निरन्तर रहने लगा था।

ऐसा क्षणिक अनुभव मिलना भी कोई नगण्य प्राप्ति नहीं। इसका प्रभाव भी व्यक्ति के समग्र जीवन को छू जाता है। अनुभव प्राप्ति के समय की ध्येय साथ की तन्मयता, आनन्द, आश्चर्य, कृतकृत्यता तथा आत्मदर्शन द्वारा प्राप्त मोहविजय की खुमारी की कुछ झलक उपाध्याय श्री यशोविजय जी महाराज के निम्नलिखित उद्गारों में से पाठक प्राप्त कर पायेंगे—

हम मगन भये प्रभु ध्यान में, ध्यान में प्रभु ध्यान में।
बिसर गई दुविधा तन-मन की, अचिरासुत गुण-गान में ॥१॥
हरिहर ब्रह्म पुरन्दर की रिद्धि, आवत नाहि कोई मान में।
चिदानन्द की मौज मची है, समता-रस के पान में ॥२॥
इतने दिन तू नाहि पिछाण्यो, मेरो जनम गयो सो अजान में।
अब तो अधिकारी होई बैठे, प्रभुगुण अखय खजान में ॥३॥

१. Arthur Osborne, 'Raman Maharshi And the Path of Self Knowledge., pp. 18-24 (Rider and Co. London and Jaico Publishing House, Mahatma Gandhiji Road, Bombay).

[हिन्दी अनुवाद : वेदराज वेदालंकार, 'रमण महर्षि एवं आत्मज्ञान का मार्ग', पृष्ठ ६-१२ (शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी अस्पताल रोड, आगरा ३)]

२. श्री रमण महर्षि ने 'अपने' के स्थान पर 'मेरे' शब्द का प्रयोग किया है। उन्हीं के शब्द यहाँ दिये हैं, इसलिए परिवर्तन नहीं किया, जैसे—'मेरे अंगों को स्थिर रखकर लेट गया'—के स्थान पर 'अपने अंगों को स्थिर करके लेट गया' होना चाहिए।

गई दीनता अब सबही हमारी, प्रभू ! तुझ समकित दान में ।
 प्रभु गुण अनुभवरस के आगे, आवत नाहि कोउ मान में ॥४॥
 जिनही पाया तिनहि छिपाया न कहे कोउ के कान में ।
 ताली लागे जब अनुभव की, तब समझे कोई शान में ॥५॥
 प्रभुगुण अनुभव चन्द्रहास ज्यों, सो तो न रहे म्यान में ।
 वाचक 'जश' कहे मोह महाअरि, जीत लियो है मैदान में ॥६॥

अनुभूति से आता हुआ मूल्यपरिवर्तन

बहुधा प्रारम्भिक अनुभव थोड़े ही पलों का होता है—मानों बिजली की कौंध की भाँति एक क्षण में परमात्मा के दर्शन होते हैं और उसी प्रकार वे अलोप हो जाते हैं। किन्तु ये थोड़े-से ही क्षण व्यक्ति की मानसिक वृत्ति में क्रांति ला देते हैं। 'अंशे होय इहां अविनाशी, पुद्गल जाल तमाशी'—इस उक्ति में उपाध्याय श्री यशोविजयजी महाराज अनुभवयुक्त व्यक्ति का चित्र स्पष्ट रूप से उभारते हैं। किसी भयानक सपने में भयभीत बने सोये हुए व्यक्ति की मानसिक अवस्था एवं नींद खुल जाने पर भय रहित होकर स्वयं में हल्कापन अनुभव करते उस व्यक्ति की मानसिक अवस्था में जो अन्तर है, ठीक वही अन्तर अनुभव प्राप्त करने वाले व्यक्ति की, अनुभव के पूर्व की एवं अनुभव के बाद की मानसिक स्थिति में पड़ जाता है। नींद से जगे हुए व्यक्ति को यह ज्ञान हो जाता है कि स्वप्न की सृष्टि मात्र अपना मानसिक भ्रम था, यह होते ही उसके मन में स्वप्न की घटना का कोई महत्त्व नहीं रहता। इसी प्रकार आत्मा के ज्ञान-आनन्दमय शाश्वत स्वरूप की स्वानुभवसिद्ध प्रतीति मिलते ही भव की भ्रांति मिट जाती है एवं बाह्य जगत स्वप्न के तमाशे-जैसा ही निस्सार प्रतीत होता है।

शकल अलग : 'बिरादरी' एक

अनुभव में गहराई एवं स्थायित्व का तारतम्य होता है।^१ किसी का अनुभव गहरा एवं स्थायी होता है, तो किसी का क्षणजीवी होता है। आत्मानुभव मिलने के बाद किसी के बाह्य जीवन में जबर्दस्त परिवर्तन आता है, तो किसी का बाह्य जीवन पहले की तरह ही व्यतीत होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। अनुभव के बाद व्यक्ति के बाह्य जीवन में कोई परिवर्तन आये या न आये, किन्तु उसका आन्तरिकलेवर अवश्य बदल जाता है; जीवन एवं जगत विषयक उसकी दृष्टि में तो जड़मूल परिवर्तन होता ही है, क्षणिक अनुभव भी व्यक्ति के मानस पर अपना प्रभाव अचूक छोड़ जाता है। अनुभव प्राप्त व्यक्ति अनुभव के पूर्व की और उसके बाद की अपनी दृष्टि में इतना भारी फर्क अनुभव करता है कि उसने मानो नया ही जन्म लिया हो, ऐसा अनुभव करता है।

यह नहीं कि अनुभव ध्यान के समय ही प्राप्त हो; हो सकता है कि कोई भव्य हृदयस्पर्शी काव्य, उच्च संगीत या ज्ञानियों के किसी वचन का मनन करते हुए चित्त स्तब्ध हो जाए, देह का भान जाता रहे एवं आत्मज्योति झिलमिला उठे। ऐसा भी होता है कि मनुष्य किसी भयानक विपत्ति में फँसा हुआ हो—

१. योगशास्त्र, प्रकाश-१२, श्लोक-१३।

इस प्रकार का एक प्रसिद्ध उदाहरण अरुणाचल, तिरुवन्नमलाई, तमिलनाडु (दक्षिण भारत) के आत्मनिष्ठ संत श्री रमण महर्षि का है। यह असाधारण अनुभूति उन्हें अचानक ही कैसे मिली, यह वृत्तान्त आप पहले पढ़ चुके हैं।

निराशा, विषाद एवं उदासीनता से वह बेतरह घिर गया हो—उस दरम्यान यह अनुभव अकस्मात् आये; एकाएक निराशा, विषाद, उदासीनता इत्यादि सभी हट जाएँ एवं वह अपनी परिस्थिति का निर्लेप साक्षी रह जाए। जन्मान्तर की साधनाओं के संस्कार जाग जाने पर, किसी को इस जीवन के कुछ भी प्रयत्न, बिना किसी पूर्व तैयारी अथवा बिना किसी बाह्य निमित्त के ही तत्त्वदर्शन की प्राप्ति हो जाती है। कई बार तो जिसका बाह्य जीवन पाप एवं अनाचार के पंकिल मार्ग में अग्रसर रहा हो, ऐसे व्यक्ति को भी, इस तरह एकाएक ही आत्मानुभव मिलता है एवं उसके जीवन की दिशा बदल जाती है, और भयंकर गुनहगार महान सन्त बन जाता है।

चाहे जिस प्रकार से अनुभव मिला हो, किन्तु सभी अनुभवियों की बिरादरी एक ही है। देश, काल एवं मानव द्वारा रचित जाति, रंग या मत-पंथों के बाह्य भेदों को वींध कर वे एक दूसरे की अनुभव को भाषा को पहचान लेते हैं। किसी उच्च शिखर पर पहुँचने के लिए, तलहटियों से भिन्न-भिन्न मार्गों से जाने वाले यात्री; उदाहरणार्थ कदम्बगिरि की ओर से, घेटी की तलहटी की ओर से अथवा पालीताणा के पास की तलहटी से सिद्धगिरि पर चलने वाले—ज्यों-ज्यों ऊपर चढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों वे एक दूसरे के करीब आते-जाते हैं, एवं शिखर पर पहुँचने पर तो सभी एक ही स्थल पर आकर मिल जाते हैं, ठीक वैसा ही आध्यात्मिक पथ पर भी होता है। जिन-जिन को आत्मतत्त्व का अपरोक्ष अनुभव प्राप्त होता है, उन-उन में एक मूलभूत साधर्म्य आ जाता है। अपनी तात्त्विक सत्ता देह एवं जगत से परे है और इस सत्ता में अवस्थित होना यही मुक्ति है—यह बात प्रत्येक 'अनुभवी' के अन्तर् में बस जाती है। अतः परिभाषा के भेद को छोड़कर, वे एक-दूसरे के मन्तव्यों में रहा हुआ साम्य परख सकते हैं। इससे कोई अदृश्य तन्तु इनके बीच बन्धुभावना की गाँठ बाँध देता है। अपनी स्वायत्तसत्ता के अनुभव के परिणामस्वरूप जीवन-दृष्टि का प्रभाव प्रायः उनके समग्र जीवन-व्यवहार पर पड़ता है। नये उन्नत आदर्शों के क्षितिज उनके समक्ष खुलते हैं। दृष्टि की विशालता एवं आशावादी जीवनदृष्टि अनुभवशील व्यक्ति का प्रमुख लक्षण बन जाता है। उनकी दृष्टि छिछली न रहकर तत्त्वग्राही बन जाती है, बाह्य प्रदर्शनों से भरमाती नहीं, और न वह अंधानुकरण करती है। वह धर्म, नीति, देश-प्रेम, जीवन-पद्धति आदि किसी भी बात-विषयक प्रचलित मान्यताओं और व्यवहारों को अपनी विवेक-बुद्धि से कसकर देखती है। शास्त्रवचनों के रहस्य को भी वह शीघ्र ग्रहण कर पाती है। निरर्थक वाद-विवादों में उसे रस नहीं रहता। अतः अन्य लोग जहाँ उग्र चर्चाओं में उलझ जाते हैं, वहाँ वह शान्त रहता है।

आत्मज्ञान की उषा

जैसे सूर्योदय से पहले रात्रि के अन्धकार की गहनता को चीरती हुई उषा आती है, वैसे ही आध्यात्मिक साधकों के जीवन में, अनुभव के आगमन से पहले बहिरात्म-भाव को मन्द करती हुई, आत्म ज्ञान की प्रभा फैलती है। इस झलमल प्रकाश में भी मुमुक्षु को स्वरूप का कुछ भान जरूर होता है, परन्तु जब अनुभव के द्वारा उसे स्वरूप की पक्की प्रतीति मिलती है, तभी उसकी बहिरात्मदृष्टि पूर्ण रूप से निराधार बनकर हटती है एवं अन्तर्दृष्टि खिल उठती है। कहा गया है—

ज्ञानतणी चांदरणी प्रगटी तब गई कुमति रयणी रे।

अकल अनुभव उद्योत हुआ जब सकल कला पिछाणी रे ॥

